'मन्नत': सादिका नवाब 'सहर'

डॉ. कुसुम संतोष विश्वकर्मा

सादिका नवाब 'सहर' उन लेखिकाओं की श्रेणी में आती है जो केवल स्वान्तः सुखाय के लिए लेखन कार्य नहीं करती बल्कि उनकी लेखनी में समाज के प्रति एक कर्तव्य का भाव भी सहज ही झलकता है। आप अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के बदलते रुख को पूरी सच्चाई के साथ उकेरने में सफल रही है। भारतीय भाषा परिषद द्वारा प्रकाशित आपकी कृति 'मन्नत' इसका सहज प्रमाण प्रस्तुत करती है। 'मन्नत' आपकी संज़ीदा लेखनी का उदाहरण है। जिसे भारतीय भाषा परिषद ने बखूबी समझा और आपकी कृति प्रकाशित करने का भार लिया। यह एक लेखक के लिए सम्मान की बात है।

'सतवांसा' कहानी हमारे सामने दवा के नाम पर हो रही खुली लूट को चित्रित करता है। किस प्रकार निजी अस्पताल अपनी मन-मर्जी की फ़ीस लोगों से इलाज के नाम पर वसूलते हैं और दूसरी तरफ अनेक सरकारी योजनाओं के तहत चलने वाले गवर्नमेंट हॉस्पिटलों में आधारभूत सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं है। गरीब व्यक्ति निजी अस्पतालों में जाने की हैसियत नहीं रखता और सरकारी अस्पताल अपने ढुल-मुल रवैया और लापरवाही से गरीबों के जीवन से खिलवाड़ करते हैं।। वर्तमान समय में गरीब व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं एक स्वप्न सी हो गई हैं। युसुफ़ और उसकी पत्नी अपने एक दिन के नवजात शिशु को कड़ाके की ठंड और बारिश में एक अस्पताल से दुसरे अस्पताल की खाक छानने को मजबूर हैं। बच्चा अत्यधिक कमजोर है और उसे 'इनक्यूबेटर' की जरूरत है लेकिन पास के सरकारी अस्पताल में इनक्यूबेटर की सुविधा ही नहीं है और निजी अस्पताल एक दिन का दो से तीन हजार रुपया चार्ज करते है जो यूसुफ़ के लिए नामुमकिन था। कहानी की नायिका इस बच्चे को बचाने की पूरी कोशिश करती है। वह सरकारी अस्पताल के बड़े डॉक्टर से लेटर लिखवा कर देती है ताकि बड़े सरकारी हॉस्पिटल में युसूफ़ को आसानी से प्रवेश मिल जाए लेकिन इस खिड़की से उस खिड़की और इस डॉक्टर से उस डॉक्टर के चक्कर लगाते हुए युसूफ़ को बहुत देर हो जाती है और युसूफ़ का सतवासा बेटा दम तोड़ देता है।

कहानी की नायिका युसूफ़ की सहायता करना चाहती है और भरसक प्रयास भी करती है लेकिन इन सब के बीच भी वह आत्मसंतुष्टि और दिखावे के स्वार्थ से खुद को मुक्त नहीं कर पाती। वह स्वयं एक प्राध्यापिका है और उसका खुद का निजी अस्पताल है जो सभी आधुनिक सुविधाओं से लैस है लेकिन उसमे वह युसूफ़ के बच्चे को एडमिट कराने का साहस भी नहीं कर पाती और अपने पति की अस्वीकृति के आगे वह हथियार डाल देती है।

प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने मुस्लिम समाज की उस सच्चाई को भी रेखांकित किया है जहाँ आज भी अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी और रूढ़ हो चुकी मान्यताओं को ढोते रहने की बेबसी है। बेटे की चाह में युसूफ़ दूसरा प्रेम विवाह करता है जबकि उसको खाने के लाले हैं, वह रद्दी उठाने का काम करता है और उसकी पत्नी साबिरा भीख मांगने का काम करती है युसूफ़ को पहले से ही तीन बेटियाँ हैं।

स्त्री की स्थिति चाहे उच्च वर्ग में हो अथवा निम्न वर्ग में, एक जैसी ही है साबिरा पैसों के अभाव में अपने बच्चे को तिल-तिल मरते हुए देखने के लिए मजबूर है वही उच्च वर्ग की नायिका जो आर्थिक रूप से भी सबल है लेकिन स्वतंत्र निर्णय लेने में वह खुद को अक्षम पाती है।

'शरयाँवाली' कहानी पाठकों के समक्ष स्त्रियों के प्रति समाज की दूषित सोच को बेबाकी से प्रस्तुत करती है। नौ वर्ष की नसीबन का विवाह चालीस साल के उसके बहनोई से कर दी जाती है क्योंकि बड़ी बहन अपने पीछे दो बच्चों को छोड़ कर गई थी। नसीबन की और भी बड़ी बहनें थी लेकिन सभी का निकाह हो चुका था। नसीबन सभी भाई-बहनों में सबसे छोटी थी। निकाह के दो साल के भीतर ही दोनों बच्चों ने नसीबन का साथ छोड़ दिया और बीमारी में चल बसे बच्चों का गम पति ने दिल पर ले लिया सो वो भी नसीबन का साथ छोड़ अल्लाह को प्यारे हो गए। नसीबन पूरी दुनिया में अकेली रह गई। पति ने अपने पीछे नसीबन के लिए बहुत सारी सम्पत्ति छोड़ी थी। नसीबन पूरा जीवन भी बैठ कर खाती तो भी खत्म न होती। लेकिन नसीबन तो प्यार और लगाव की भूखी थी। इसी चाह में उसने दो और शादियाँ भी की। समाज और नसीबन के भाई-बहनों ने इसी की वजह से उससे रिश्ता तोड़ लिया। वे कहते "मर्द बनने चली है" जबकि भाई की इकलौती बीबी भी उनकी तीन नंबर की बीवी थी। नौ साल की नसीबन १५ वर्ष की होते-होते बेवा हो जाती है लेकिन वह अपने भीतर की औरत का क्या करे। उसकी जरूरते और अनुभूतियों का क्या करे जो उसे अकेले रहने पर खाने को दौड़ती हैं। चालीस साल के व्यक्ति से नौ वर्ष की नसीबन का निकाह करते समय, समाज तनिक भी संवेदना नहीं दिखाता है। चालीस साल का पुरुष बिना पत्नी के नहीं रह सकता फिर पंद्रह साल की नसीबन से वही समाज क्यों पतिव्रता होने की उम्मीद रखता है?

मातृत्व के अभाव में स्त्री का जीवन व्यर्थ है यदि उसमें माँ बनने की क्षमता नहीं तो उसे सहज जीवन जीने का अधिकार भी समाज नहीं देता। 'मन्नत' कहानी इसी तथ्य को रेखांकित करती है। मुक्ता बबनराव से प्यार करती थी, बबनराव भी उसे चाहता था लेकिन मुक्ता को माहवारी नहीं आती थी, जिस कारण वह माँ बनने में सक्षम नहीं है जिसका मूल्य मुक्ता आजीवन अकेली रहकर चुकाती है। अपनी छोटी बहनों का विवाह उसके सामने होता है। सभी का अपना घर है अपने बच्चें हैं। आज मुक्ता के भाई की लड़की का विवाह है उसे पहले ही नसीहत दी जाती है कि वह बाहर ना आए। माँ का मुक्ता से अतिरिक्त लगाव है, लेकिन वह भी समाज के बन्धनों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाती। आजीवन मुक्ता को अविवाहित रखती है। परिणाम स्वरूप मुक्ता अनेक मानसिक बिमारियों से ग्रस्त हो जाती है। बबन की माँ मुक्ता को समझाते हुए कहती है कि "लोग पूछेंगे न कि, तेरे बेटे में क्या दोष था जो आँख देखी मक्खी निगल ली।" वही बबनराव की माँ विवाह के कितने वर्ष बीत जाने के बाद भी पोते के सुख से वंचित है और आज वह पांडुरंग से अपनी सूनबाई की गोद भर देने की मन्नत मांग रही है।

एक छोटा-सा एस.एम.एस. अथवा मिस्ड कॉल किस प्रकार किसी के शांत जीवन में हलचल मचा देता है, उसे किस प्रकार पागलपन की हद तक बेचैन कर देता है यही 'सादिका जी' की 'एस.एम.एस.' कहानी का सार है। कृष्णा एक सीधा-साधा लड़का है। उसकी दुनिया उसका घर और उसके दोस्त थे, किन्तु एक अंजान एस.एम.एस.और मिस्ड कॉल के कारण उसकी पूरी जीवन शैली ही बदल जाती है। कहानी बताती है की टेक्नोलॉजी केवल हमारे जीवन को सुविधाजनक ही नहीं बनाती बल्कि हमारे जीवन में अनेक जटिलताओं को भी जन्म दे कर जीवन को वीभत्स बनाती है। इसका उपयोग पूरी सावधानी के साथ तो करना ही चाहिए, उसके द्वारा पड़ने वाले प्रभावों से भी हमे सतर्क रहने की जरूरत है।

मुम्बई की सडकों पर दिन-रात दौड़ते टैक्सी वालों को हम रोज ही देखते है। एक दिन अगर ये हड़ताल कर दे तो पुरे मुम्बई शहर की सांस थम जाती है लेकिन मुम्बई के लोगों के जीवन को सुगम बनाने वाले इन टैक्सी ड्राइवरों का जीवन कितना मुश्किल और मुसीबतों से भरा है यह आम जनता नहीं जानती। इन्ही टैक्सी ड्राइवरों के जीवन के अनछुए पहलुओं को 'मीटर गिरता है' कहानी चित्रित करती है। कहानी का नायक एक टैक्सी ड्राइवर है आज उसे कम-से-कम ७०० रुपए

कमा कर के ही घर जाना है क्योंकि बेटा बीमार है डॉक्टर ने उसे ६०० रूपये की दवा लिख कर दी है। टैक्सी ड्राइवरों की स्थिति इतनी भयंकर है कि वे अपनी रोजमर्रा की जरूरतें भी पूरी कर पाने में स्वयं को अक्षम पाते हैं। सुबह बच्चों के उठने से पहले निकल जाते हैं और शाम को उनके लौटने तक बच्चे उनकी राह देखकर सो जाते हैं। शहर के ट्रैफिक ने इन टैक्सी ड्राइवरों की जिन्दगी को और भी बदहाल बना दिया है। भारी-भरकम बिजली का बिल न भर पाने के कारण वे अँधेरे में रहने को मजबूर है। पानी का अलग कनेक्शन लेना इनके लिए लोहे के चने चबाने के बराबर है, जिस कारण पानी के लिए लम्बी कतारों में खड़े रहना उनकी मजबूरी है। पूरा दिन मेहनत करने के बाद भी वे लाख रुपए का एक झोपड़ा तक नहीं खरीद पाते। आजीवन ये टैक्सी ड्राइवर अपने बच्चों और पत्नी के सुख से वंचित मुम्बई के लोगों के सफर को सुखमय और आरामदायक बनाने में लगे रहते हैं।

जब तक रिश्ते दोस्ती तक सीमित होते हैं, और अपनी दूरी बरकरार रखते हैं तब तक उनमें मिठास बनी रहती है जैसे ही वे हमारे बहुत नजदीक आने की कोशिश करते हैं। उनमें एक प्रतियोगिता और ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो जाता है। परिणामस्वरुप उनकी सहजता और खूबसूरती कही खो जाती है। उनके भीतर की गर्मी कहीं चूक जाती है। 'बेनाम-सी ख़लिश' कहानी इन्हीं तथ्यों को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। रूबी और सबीहा जब तक सहेलियाँ थीं तब तक उनमें बेहद लगाव और अपनापन होता है लेकिन जैसे ही रूबी को अपनी सहेली सबीहा और भाई के बीच बढती नजदीकियों का अंदाजा होता है उसमें एक अजीब सी बेचैनी और ख़लिश उत्पन्न हो जाती है। जो रिश्ते पहले एक-दूसरे की हर छोटी-बड़ी ख़ुशी और गम का ख्याल रखते थें, वे अब केवल उन रिश्तों पर चोट करने के लिए ही तत्पर रहते हैं लेकिन सबीहा की माँ स्थिति को आक़ लेती है और अपनी बेटी की जिन्दगी जहन्नुम बनने से बचा लेती है।

हम आधुनिक होने का दम तो बहुत भरते हैं लेकिन विचारों से आज भी उतने ही संकीर्ण और बेकार हो चुकी रुढ़ियों को ढोने से बाज नहीं आते। यही 'सुलगती राख' कहानी का मुख्य कथ्य है। शालू जो विनोद से पहली नजर में ही प्रेम कर बैठती है, वही विनोद के बीते हुए कल के बारे में जान कर उससे मुँह मोड़ लेती है। वह अपने आने वाले कल को बेदाग देखना चाहती है, जबकि विनोद सच की मजबूत दीवार पर अपने प्रेम का महल खड़ा करना चाहता है। जिसकी उसे बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है, किन्तु समय का खेल निराला है शालू जिस गंदगी से बचने के लिए शरद के पास आती है वह स्वयं को उससे भी दो गुना अधिक गंदा पाती है।

बेरोजगारी हमारे देश के लिए और खास कर युवाओं के लिए एक अभिशाप साबित हो रही है। नौकरी की चाह में हम रिश्तों के अहसास तक को भूल गए हैं। पति-पत्नी के रिश्तों की गर्माहट कहीं ठंडी पड़ती जा रही है, यही 'ऍबोर्शन' कहानी का केंद्रीय बिंदु है। सरीना जो कहानी की नायिका है वह दो महीनें की गर्भवती है। उसकी पढ़ाई अभी भी जारी है, वह वार्षिक परीक्षा में शामिल होने आई है लेकिन चक्कर और उल्टियों की वजह से वह विकल हो उठती है और परीक्षा देने का साहस नहीं जुटा पाती। प्राध्यापक पति उसे अनिवार्यतः परीक्षा दिलाना ही चाहता है क्योंकि यदि सरीना बी.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा निकाल लेती है तो उसे सेठ के यहाँ नौकरी मिल जाएगी। लाख पति के समझाने पर भी सरीना परीक्षा देने का साहस नहीं जुटा पाती अंततः पति उसे खींचता हुआ बाहर ले जाता है और कहता है – "चल अभी तेरा ऍबोर्शन करवाता हूँ।" एक नौकरी के लिए पिता अपने बच्चे की जान लेने तक से भी नहीं चूकता है।

'चाहे-अनचाहे' ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो ईमानदारी से काम करता हुआ सफलता की बुलंदियां छूता है लेकिन उसके आस-पास जो चापलूसों की भीड़ हमेशा रहती है उनके षड्यंत्रों का शिकार हो जाता है और अपना सब कुछ खुद ही गवां बैठता है।

एक व्यक्ति जब भरीपूरी गृहस्थी के बाद भी दूसरी पत्नी ले आता है तो घर का एक-एक व्यक्ति किन परिस्थितियों को झेलता है इसी तथ्य का बड़ी बारीकी से लेखिका ने 'नोट्स' कहानी में चित्रण किया है। दो नावों पर सवार व्यक्ति कभी किनारे नहीं उतरता। वह स्वयं तो डूबता ही है अपने पूरे परिवार का भविष्य भी अंधकार में डाल देता है।

शरीर भले ही किसी बीमारी से अशक्त हो गया हो लेकिन उसके बाद भी अयाज़ एक बहुत ही सुन्दर लड़की से दिल लगा बैठता है। पोलियो ग्रस्त अयाज़ जमीन पर घसीट कर चलता है लेकिन वह अपने दिल का क्या करे जो पंख लगा कर खुले आसमान की उचाईयां नाप रहा है। दिल पर किसी का बस नहीं होता, हर व्यक्ति अपने दिल के आगे मजबूर होता है। अयाज़ दिल के हाथों मजबूर नीलू के पीछे चल पड़ता है न आज की उसे परवाह है और न आने वाले कल की चिंता। कहानी, 'उधड़ा हुआ फ्रॉक' इसी प्रेम की तस्वीर है।

इक्कीसवीं सदीं के कम्प्यूटर और टेक्नोलॉजी वाले युग में भी लड़कियों को आज भी यही शिक्षा दी जाती है कि एक लड़की के लिए उसका शौहर ही उसका खुदा होता है शौहर की नाफरमानी उस खुदा की नाफरमानी के समान है। लड़का कैसा भी हो यदि उसके पास धन है तो उसके सारे ऐब भी जायज़ है। माँ-बाप जिस खूटे से लड़की को बांध दे बिना किसी विरोध के उसे उस घर चले जाना चाहिए और यदि लड़की ने किसी प्रकार की नाफ़रमानी की तो उसे उसकी सज़ा अवश्य मिलनी चाहिए। 'हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी' एक ऐसे ही संसार को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हुयी कहानी है।

समग्र रूप से यह कहानी-संग्रह एक संज़ीदा लेखन कार्य को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। जो अपने समय की समस्याओं से सीधे टकराने का साहस रखते हैं। लेखिका ने कहानी की अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता को अहम् स्थान दिया है। कहानियों को पढ़ते हुए कहीं भी बनावटीपन का अहसास नहीं होता है। पाठक उन कहानियों में डूब जाता है। कहानियों के पात्र अथवा घटनायें उसे अपने आस पास के पात्र और घटनायें लगते हैं। लेखिका प्रस्तुत कहानी-संग्रह के माध्यम से सीधे अपने पाठकों से जुड़ती है और उनकी समस्याओं को दुनिया के समक्ष पूरी सच्चाई के साथ रखने में सफल होती हैं।

संपर्क :

डॉ. कुसुम संतोष विश्वकर्मा
अस्सिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
श्री एम. डी. शाह, महिला महाविद्यालय,
मालाड, मुम्बई
vishwakarmakusum@ymail.com